स्वास्थ्य एवं अध्यात्म

श्याम शंकर उपाध्याय
पूर्व जनपद एवं सत्र न्यायाधीश/
पूर्व विधिक परामर्शदाता मा0 राज्यपाल
उत्तर प्रदेश, राजभवन
लखनऊ।
मो0- 9453048988
ई-मेलः ssupadhyay28@gmail.com

मनुष्य सहित समस्त जीवों का संसार से सम्बन्ध शरीर के ही माध्यम से है। शरीर का अस्तित्व पदार्थ (matter) निर्मित स्थूल शरीर से ही नहीं है अपितु उसके अभिन्न अंग के रूप में सूक्ष्म शरीर जिसमें मन, बुद्धि, चित्त, चेतना अथवा प्राण भी सम्मिलित हैं, से भी है। शरीरधारियों में ब्रह्माण्ड में विद्यमान समस्त तत्वों के समाहित होने के कारण शास्त्रों में कहा भी गया है **''यत् पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे, यत्ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे''।** भारतीय दर्शन की दृष्टि से समस्त ब्रह्माण्ड में मात्र तीन तत्व–ब्रह्म, जीव तथा माया विद्यमान हैं परन्तु इनमें से भी 'जीव' तथा 'माया' की अपनी स्वतन्त्र उत्पत्ति अथवा सत्ता नहीं होकर ये दोनों भी 'ब्रह्म' के ही अंश अथवा उसी की शक्ति हैं और इस प्रकार मनुष्य सहित समस्त जीव 'ब्रह्म' के ही अंश हैं । गीता के अनुसार जीवों की शरीर संरचना अपराशक्तियों यथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार से हुई है । संसार में जीव का अस्तित्व पंचभौतिक शरीर में ही होता है और स्वभाव से जड़ 'प्रकृति' तथा चेतनस्वरूप 'जीव' अपने आप में 'ब्रह्म' नहीं है अपितु ब्रह्म के शरीर की तरह हैं ।

2. ब्रह्म अर्थात् ईश्वर को वेदों में ***''रसो वै सः''*** अर्थात् रस अथवा आनन्द का आदिस्रोत व स्वरूप होना कहा गया है और ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव का मूल स्वभाव आनन्दोन्मुखी होना कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि आनन्द के परमस्रोत ब्रह्म से पृथक होकर जीव जब संसार में जन्म लेता है तो परमानन्द अर्थात् ईश्वर का अंश होने के कारण उसी की खोज में अर्थात् आनन्द की ही खोज में जीवन भर अनगिनत प्रकार के कर्मों को करता रहता है । इस प्रकार मनुष्य सहित समस्त जीवधारियों के प्रत्येक कर्म का लक्ष्य आनन्द (ईश्वर) की प्राप्ति करना ही होता है । सुख का स्रोत धर्म को बताते हुए कहा गया है **''सुखस्य मूलम् धर्मः''।** आनन्द की प्राप्ति के मार्ग में जिस साधन का आश्रय मनुष्य सहित समस्त जीवों को लेना होता है, वह साधन शरीर ही है और इसीलिए सभी धर्मों के पालन तथा कर्मों के निष्पादन हेतु शरीर की उपयोगिता व उसकी महत्ता को रेखांकित करते हुए भारतीय मनीषियों द्वारा **''शरीरमाद्यम् खलु धर्म–साधनम्''** कहा गया है । प्राचीन भारत के चिकित्सा शास्त्र के महान विद्वान आचार्य 'चरक' ने अपने प्रसिद्ध चिकित्सीय ग्रन्थ '**चरक संहिता**' में सार्थक जीवन जीने के लिए शरीर के महत्व को रेखांकित करते हुए इस प्रकार कहा है : ''**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्, रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च''** जिसका तात्पर्य है कि जीवन के चार प्रमुख उद्देश्यों – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति हेतु शरीर का रोगरहित होना नितान्त आवश्यक है अन्यथा शरीर के रोगग्रस्त होने से जीवन को सार्थक बनाने वाले उपरोक्त चारों कल्याणकारी उद्देश्यों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का नाश हो जाता है । प्राचीन भारत के महान चिकित्सक चरक ने 'चरक संहिता' में सुख और रोग के उत्पत्ति का स्थान शरीर और मन को बताते हुए कहा है **''शरीरं सत्वसंज्ञं च**

व्याधीनामाश्रयो मतः, तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणं मनः'' । शरीर को रोगों का घर मानते हुए **''शरीरम् व्याधिमन्दिरम्''** कहा गया है ।

3. भारतीय चिन्तन परम्परा में मनुष्य के जीवन के कुल चार उद्देश्य (पुरुषार्थचतुष्टय)–धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होना कहे गये हैं । यजुर्वेद के अध्याय 36 के मन्त्र संख्या 24 में जीवन जीने की कला इस प्रकार होना बताई गयी है.....**''तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताक्षुक्रमुच्चरत्, पश्येम् शरदः शतम्, जीवेम् शरदः शतम्, श्रुण्याम् शरदः शतम्, प्रब्रवाम् शरदः शतम्, अदीनाः स्याम् शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्''** जिसका तात्पर्य है ''हम नेत्रों से शुभ–शुभ देखें, हमारे सम्मुख अथवा सम्पर्क में जो भी आये उससे शुभ व कल्याणकारी बात करें, हम सौ वर्ष तक देख सकें, सौ वर्ष तक जी सकें, सौ वर्ष तक सुन सकें, सौ वर्ष तक ठीक से बोल सकें, सौ वर्ष तक दीन–हीन (पराश्रित) नहीं होवें और उपरोक्त चीजें हमारे साथ सौ वर्ष पश्चात् भी बार–बार होवें'' ऐसी मंगलकामना से परिपूर्ण प्रार्थना परमेश्वर द्वारा स्वीकार किये जाने की कामना वैदिक–ऋषियों द्वारा की गयी है। अतएव यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से विचारणीय हो जाता है कि मनुष्य उपरोक्त आशय की आदर्श जीवन–दशा के साथ सौ वर्ष तक किस प्रकार शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हुए जी सकता है ?

4. संसार के दुःखों की सबसे बड़ी औषधि 'अध्यात्म' में है । अध्यात्म का अर्थ है–अपने आप के निकट आना अथवा स्वयं को जानना अर्थात् आत्म–तत्व व ईश्वर को जानना । तात्विक दृष्टि से अध्यात्म का अर्थ अपने आप में वापस आना, आत्म–ज्ञान हो जाना भी है। भारतीय दार्शनिक–सूत्र **''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या''** की दृष्टि से जीवन व जगत शाश्वत नहीं अपितु नश्वर हैं । संसार और उसमें निरन्तर चल रहे अनगिनत खेल–तमाशों में अन्तर्मन से निर्लिप्त व अनासक्त परन्तु बाह्य रूप से संलिप्त व सक्रिय रह सकने की कला विकसित कर पाने में समर्थ मनस्वी व्यक्ति ही संसार के अनित्य आकर्षणों व प्रलोभनों से बच सकता है न कि संसार और इसके आकर्षण में गहरे संलिप्त चिन्तनहीन व्यक्ति । कदाचित् जीवन व संसार की इसी नश्वरता व अनिश्चितता को ध्यान में रखते हुए उर्दू के विख्यात शायर गालिब को अपना यह शेर कहना पड़ा था **''दुनिया के मजे गालिब हरगिज कम न होंगे, अफसोस बस यही है कि हम ही न होंगे''।**

5. महाभारत में आये कथानक के अनुसार ग्रीष्म–ऋतु में अज्ञातवास के दौरान जंगल में प्यास से व्याकुल होने पर धर्मराज युधिष्ठिर के अन्य चार भाइयों के जलाशय के पास पहुँचकर जलाशय के स्वामी (यक्ष) के प्रश्नों का उत्तर दिये बिना जल पी लेने के कारण बेहोश हो जाने पर जब उनकी खोज में स्वयं युधिष्ठिर जलाशय पर पहुँचे और अपने मूर्छित पड़े भाइयों को जलाशय से जल लेकर पिलाना चाहे तब उन्हें भी उनके भाइयों की ही भांति बिना प्रश्नों का उत्तर दिये हुए जलाशय से जल लेने पर अनिष्ट का सामना करने से सावधान करते हुए यक्ष ने युधिष्ठिर से कई प्रश्न पूछे जिनमें से एक प्रश्न यक्ष द्वारा यह भी किया गया था कि संसार में कौन–कौन से सुख हैं और संसार में सर्वाधिक सुखी कौन है ? धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा यक्ष के उक्त प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया गया था ''**अर्थागमो च नित्यमरोगिता च, प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च, वश्यश्य पुत्रो अर्थकरी च विद्या, षड जीव–लोकस्य सुखानि राजन्''** जिसका अर्थ है ''हे राजन् (यक्ष) ! इस जीव–लोक (संसार) में कुल छः प्रकार के सुख हैं जो इस प्रकार हैं–जिसे धन मिलता रहे, सदैव रोगरहित अर्थात् स्वस्थ रहे, जिसकी पत्नी प्रेम करने वाली व रूपवती हो, और प्रिय बोलने वाली भी हो, जिसका पुत्र आज्ञाकारी हो और जिसकी विद्या (ज्ञान) उसे अर्थोपार्जन करने में सहायक हो और इस प्रकार उपरोक्त छः प्रकार के सुख जिसे जीवन में प्राप्त हो वह संसार में सुखी है''। युधिष्ठिर द्वारा संसार के सुख पर दिया गया उपरोक्त उत्तर वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है ।

6. औसत संसारी व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए 'गीता' के अध्याय 6 में दिया गया नितान्त व्यावहारिक व सरल सूत्र इस प्रकार है**''युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा''** जिसका अर्थ है ''जो व्यक्ति उचित आहार लेने व विहार (दिनचर्या एवं आमोद–प्रमोद) सम्पन्न करने में नियमित रहता है, अपने कार्य को चेष्टापूर्वक अर्थात् मनोयोग पूर्वक करता है, सोने व जागने में नियमित रहता है अर्थात् समुचित नींद लेने के बाद समय से

जाग जाता है तो यही क्रियाएं अथवा दिनचर्या उस व्यक्ति के लिए शारीरिक व मानसिक कष्टों को समाप्त करने वाले योग की भांति हो जाती हैं''। योग और कर्म के बीच सम्बन्ध को गीता में **''योगः कर्मसु कौशलम्''** कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि मनुष्य को अपना कार्य अपनी पूरी कुशलता/क्षमता के साथ मनोयोगपूर्वक करना चाहिए अन्यथा नापसन्द व अरुचिकर मानते हुए भी बिना मनोयोग के कार्य करने पर न केवल कार्य की गुणवत्ता अपूर्ण व दोषपूर्ण रहेगी अपितु अपने ही मन अर्थात् सूक्ष्म शरीर के विरुद्ध जाकर किसी विवशतावश कार्य करने की दशा में स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर (मन) के बीच अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होने के फलस्वरूप स्थूल शरीर सहित सूक्ष्म शरीर अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी होगा ।

7. शरीर को रोगों का घर मानते हुए **''शरीरम् व्याधिमन्दिरम्''** कहा गया है । रामचरितमानस में मनुष्य के दूषित चिन्तन से उत्पन्न होने वाले शारीरिक व मानसिक रोगों का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा कहा गया है ''सुनहु तात अब मानस रोगा, जिन्ह ते दुख पावहि सब लोगा । मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला, तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला । काम बात कफ लोभ अपारा, क्रोध पित्त नित छाती जारा । प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई, उपजइ सन्यपात दुखदाई । ममता दादु कंडु इरषाई, हरष बिषाद गरह बहुताई । पर दुख देखि जरनि सोई छई, कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई । अहंकार अति दुखद डमरुआ, दंभ कपट मद मान नेहरुआ । तृष्ना उदरबृद्धि अति भारी, त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी। जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका, कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका । एहि बिधि सकल जीव जग रोगी, सोक हरष भय प्रीति बियोगी । मानस रोग कछुक मैं गाए, हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए । राम कृपॉ नासहिं सब रोगा, जौं एहि भॉति बनै संजोगा । सद्गुर बैद बचन बिस्वासा, संजम यह न बिषय कै आसा ।'' जिसका तात्पर्य है कि मोह जनित अज्ञान समस्त रोगों की जड़ है और इससे प्राणी केवल दुःख पाता है तथा बढ़ी हुई कामनाओं से वात, लोभ से कफ व क्रोध से पित्त जैसे रोगों की उत्पत्ति होती है जो छाती में जलन (अम्लीयता) उत्पन्न करते हैं और अगर उपरोक्त तीनों दोष एक साथ किसी में आ जायें तो उसे अत्यन्त दुःखद सन्निपात का रोग (mental disorder) हो जाता है, अतिशय ममता से दाद, ईर्ष्या अथवा डाह से खुजली तथा हर्ष व विषाद से गले के रोग, दूसरों को सुखी देखकर जलन करने वाले को क्षय रोग, दुष्टता व मन की कुटिलता से कुष्ठ रोग, अहंकार से कष्टकारी ट्यूमर का रोग तथा दम्भ, कपट, मद और अभिमान से स्नायु–तन्त्र का रोग, अतिशय तृष्णा से जलोदर (ascites) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। गीता में भी 'क्रोध' जैसी नकारात्मकवृत्ति के बारे में कहा गया है **''क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति''** जिसका अर्थ है कि क्रोध से मोह, मोह से स्मृति में भ्रम व क्षरण, स्मृति के क्षरण से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से मनुष्य का सम्पूर्ण नाश हो जाता है और इसीलिए गीता में **''अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्''** का सूत्र देते हुए क्रोध पर अक्रोध अर्थात् सौम्यता से विजय प्राप्त करने का परामर्श दिया गया है ।

8. दूसरे व्यक्तियों के व्यक्तित्व में विद्यमान नकारात्मक प्रवृत्तियों यथा क्रोध, संवेग, उत्प्रेरण व दुर्व्यसन आदि अपने में आत्मसात् करने से एक प्रबुद्ध व्यक्ति अपने को किस प्रकार बचा सकता है, इस सम्बन्ध में महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना प्रासंगिक है । भिक्षा मॉगते हुए महात्मा बुद्ध जब किसी दिन एक स्त्री के दरवाजे पर दुबारा पहुँचे तब स्वभाव से क्रोधी व अनुदार उस स्त्री ने महात्मा बुद्ध को भिक्षा देते हुए कई गालियॉ भी दीं और फिर दुबारा भिक्षा मॉगने हेतु अपने दरवाजे पर नहीं आने को कहा । महात्मा बुद्ध भिक्षा ग्रहण करके उस स्त्री की गालियों का कोई प्रतिकार किये बिना जब जाने लगे तब इस घटना को देख रहे व्यक्ति ने उनसे पूछा कि उन्होंने गाली देने वाली उस स्त्री से भिक्षा क्यों स्वीकार किया और उसकी गालियों का कोई प्रतिकार/विरोध क्यों नहीं किया अथवा क्या उसकी गालियों का उन्हें बुरा नहीं लगा ? महात्मा बुद्ध ने उस व्यक्ति से कहा कि मुझे तो उस स्त्री से केवल भिक्षा चाहिए थी, उसकी गालियॉ नहीं और न ही मैंने उसकी गालियॉ ग्रहण की अपितु केवल उसकी भिक्षा ग्रहण की तथा उसकी गालियॉ मेरे ग्रहण नहीं करने के कारण मेरे पास आयी ही नहीं अपितु उसी के पास ही रह गयी, इसीलिए उसकी गालियों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

उक्त सामान्य सी घटना में छुपी सीख व गहरा सन्देश किसी भी व्यक्ति को दूसरों से नकारात्मक वृत्तियॉ आत्मसात् करने से बचा सकता है।

9. जीवन के मर्म व उसके उद्देश्य की समझ रखने वाले विद्वानों के मत में यदि संसार में अनावश्यक रूप से दुःखी होने से बचे रहना है तो संसार में किसी से भी अधिक अथवा अनपेक्षित आशा नहीं रखनी चाहिए क्योंकि उसकी पूर्ति नहीं होने से उत्पन्न होने वाली निराशा दुःख के रूप में प्रकट होकर जीवन को अनायास ही दुःखी करेगी जिसका दुष्परिणाम शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर अनिवार्य रूप से पड़ेगा । इसीलिए मनीषियों ने कहा भी है **''आशा हि परम् दुःखम्, नैराश्यं परम् सुखम्, यथा संछिद्य कान्ताशाम् सुखम् सुस्वाप पिंगला''** जिसका तात्पर्य है ''जिस प्रकार पिंगला (पर–पुरुषगामिनी स्त्री) अपने पति से दाम्पत्य सुख का आग्रह नहीं करके पराये पुरुष से दाम्पत्य सुख प्राप्त करके सुखपूर्वक सुन्दर नींद में सो जाती है उसी प्रकार प्रबुद्ध व्यक्ति दूसरों से (अतिशय व अनुचित) आशा नहीं रखकर नैराश्य की स्थिति में भी सुख की अनुभूति करते हुए संसार में आशाजनित व्यर्थ के दुःख से अपने को बचा सकता है ।

10. लोक व्यवस्था में उच्च पदासीनों में प्रायः पद–जनित दम्भ व आडम्बर उन्हें समाज, परिवेश और यहां तक कि उनके परिवार–जनों तक के बीच सहज, सामान्य व स्वाभाविक तरीके से सोचने व जीने में बाधक बन जाता है जो अन्ततः अनपेक्षित तनाव व अवसाद आदि व्याधियों की ओर ले जाता है जिसे एक प्रज्ञावान् लोक–अधिकारी **'भाग्यं फलं सर्वत्र न हि विद्या न च पौरुषं'** में विश्वास करते हुए अपने पद व शक्ति–सम्पन्नता को भाग्य, भगवान एवं समाज का दिया प्रसाद व अपने ऊपर किया उपकार मानकर सहज व स्वाभाविक रूप में लेते हुए नकारात्मक वृत्तियों के प्रभाव से बचे रहकर शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकता है। न्यायाधीश–वर्ग, जिन्हें दूसरों के जीवन और मृत्यु–दण्ड तक पर निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है, उनसे समाज द्वारा हिन्दू–विधवा (Hindu Widow) सरीखा श्रृंगार–निरपेक्ष व आसक्ति–निरपेक्ष जीवन जीने की अपेक्षा की गयी थी और आज भी अधिकांश न्यायाधीशों में इस जीवन–दर्शन का विद्यमान होना देखा जा सकता है और कई में नहीं भी ।

11. तामसी भोजन व वृत्तियॉ स्वास्थ्य व मन पर नकारात्मक प्रभाव जबकि सात्विक भोजन व वृत्तियॉ स्वास्थ्यकर व पुष्टिकर प्रभाव डालते हैं । अतएव जीवन में सात्विकता व सादगी का भी नितान्त महत्व है । अत्यधिक तीखा, खट्टा, नमकीन, गरम, चटपटा, सूखा/बासी तथा जलन उत्पन्न करने वाला भोजन रजोगुण प्रधान होता है और ऐसा भोजन दुःख, शोक तथा रोग उत्पन्न करने वाला होता है। इसी लिए गीता में इस प्रकार के भोजन का निषेध करते हुए कहा गया है **''कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरुक्षविदाहिनः, आहाराः राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः''।** मद्यपायी एवं मद्यपी (मद्यपान करने वाली स्त्री) स्त्री–पुरुष दुर्व्यसन जनित अन्य सांसारिक दुर्गुणों की ओर प्रायः उन्मुख होकर न केवल अपना शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य क्षरित कर लेते हैं अपितु समाज में अपने सम्मान को भी क्षति पहुॅचाते हैं जिससे प्रबुद्ध व्यक्ति को बचना चाहिए । 'चरक संहिता' में मनोरोगों के बारे में कहा गया है **''लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्। नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यॉश्च बुद्धिमान्''** जिसका तात्पर्य है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति को मन से सम्बन्धित रोगों (मनोरोग) से बचने के लिए लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अत्यधिक प्रेम तथा लालच आदि से दूर रहना चाहिए । जीवन में वस्त्र व परिधान (Dress) का भी शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है । सीताजी का हरण करने की योजना बनाते समय मारीच के परामर्श पर रावण कई बार सन्यासी का वेश धारण करके उनकी कुटिया पर जब–जब पहुॅचा तब उसके अन्दर सीताजी के हरण का विचार ही उत्पन्न नहीं होने पर वापस आकर उसने मारीच को बताया कि सन्यासी का वेश धारण करने के कारण मेरे अन्दर सीता के हरण का विचार ही नहीं उत्पन्न होता है । विद्यार्थियों, चिकित्सकों, पुलिसजन, अधिवक्तावर्ग व न्यायाधीशवर्ग आदि के लिए जो परिधान निर्धारित है, वह वस्तुतः उनके व्यवसाय अथवा कार्य की प्रकृति व उसकी विशिष्टता से सम्बन्धित है । अतएव परिधान भी व्यक्तित्व पर गहरे तक प्रभाव डालता है ।

12. उपासना, प्रार्थना, व्रत व स्वाध्याय आदि अन्तर्मन में जाने–अनजाने पहुॅचने वाली संसार की नकारात्मक प्रवृत्तियों की मैल को साफ करने वाले उस साधन की भॉति हैं जैसे मैले कपड़े को साफ

करने के लिए डिटर्जेण्ट । छान्दोग्य उपनिषद में और पवित्र बाइबल में भी कहा गया है कि सृष्टि के अस्तित्व में आने के पूर्व सिर्फ 'ध्वनि' अर्थात् ऊर्जा थी और उसी से सृष्टि अस्तित्व में आयी । ''नादेव ब्रह्म'' की अवधारणा और ''बिग बैंग'' अथवा महाविस्फोट के सिद्धान्त में इसीलिए एकरूपता प्रतीत होती है । उपनिषदों के अनुसार ईश्वर की आराधना करने से मन शान्त होता है और मनुष्य को अपनी बुद्धि व मन को व्यवस्थित रखने में तथा उसे सन्मार्ग की ओर ले जाने में सहायता मिलती है । कदाचित् इसीलिए किसी के पूछने पर गांधी जी ने अपनी एक प्रार्थना सभा में कहा था कि ईश्वर की प्रार्थना करने से न केवल उनके अन्तर्मन का कल्मष दूर होता है अपितु उनके आत्म विश्वास व शक्ति में भी वृद्धि होती है । इसलिए संसार की विकृतियों से बचे रहने के लिए ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखने के साथ–साथ उपासना व प्रार्थना आदि का भी स्थूल व सूक्ष्म शरीर पर सुखद व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है । किसी विशेष उपलब्धि पर अतिशय खुश होने वाला अथवा अतिशय हंसने वाला उथले विचारों का व्यक्ति इन्हीं उपलब्धियों अथवा अपेक्षाओं के पूर्ण नही होने अथवा उनसे वंचित हो जाने पर कई गुना अधिक दुःखी होकर रोता है, इसीलिए गीता में **''समत्वम् योगमुच्यते''** कहते हुए **''सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ''** एवं **''समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः, शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः''** का निर्देश दिया गया है जिसका तात्पर्य है कि मनुष्य को सुख में, दुःख में, लाभ में, हानि में, जय में, पराजय में, शत्रु में, मित्र में, मान में, अपमान में, जाड़ा में, गर्मी में अविचलित रहकर इन सबको समभाव से अर्थात् सहज रूप में लेना चाहिए न कि इन्हें कष्टकर अथवा प्रतिकूल मानकर । महाभारत में संसार की तुलना विष–वृक्ष से करते हुए कहा गया है **''संसार विष–वृक्षस्य द्वे फले हि अमृतोपमे, काव्यामृत रसास्वादन तथा सज्जनसंगमः''** जिसका आशय है कि यह संसार उस विष–वृक्ष की भॉति है जिसमें अमृत सदृश दो ही मीठे फल लगते हैं–प्रथम सुन्दर साहित्य अथवा काव्य का अध्ययन तथा दूसरा अच्छे व्यक्तियों का साथ । अध्यात्म का आश्रय लेकर ही संसार में जीवन में आने वाली चुनौतियों व कष्टों का निवारण करते हुए शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहा जा सकता है ।

****